चेतना का प्रवाह – सत्य से अनन्त की ओर

डॉ. मणि सचदेव, एसोसिएट प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष, दर्शन शास्त्र विभाग, चिमनपुरा, जयपुर

यद्यपि भारतीय दर्शन में षट्दर्शन की प्राचीन वैचारिक परम्परा काफी समृद्ध है परन्तु आधुनिक युग में भी भारतीय दर्शन में काफी रोचक विचार सामने आये हैं। इनमें सर्वाधिक उत्कृष्ट विचार रहे श्री ओरोबिन्दो के जिन्होंने भारतीय चिन्तन परम्परा के श्रेष्ठतम सार तत्व और पाश्चात्य चिन्तन परम्परा का समन्वित रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म के शाश्वत सत्यों से युग को प्रभावित किया, इसलिए वे युगधर्म के व्याख्याता बन गये। उन्होंने नैतिक क्रांति एवं स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया इसलिए वे युगपुरुष और क्रांतिकारी कहलाये। वे संघर्षों की दीवारों को तोड़ कर आगे बढ़े, इसलिए वे प्रगतिशील थे। सब वर्गों के लोगों ने उन्हें सुना, समझने का यत्न किया। वे सबके होकर ही सबके पास पहुँचे, इसलिए वे विशाल दृष्टि थे।

बीसवीं सदी में प्रवेश करते जगत् की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा कि यह समय विचार शक्ति का है, मनुष्य का है। यह वह समय था जब मध्यकालीन परम्पराएँ ध्वस्त हो रही थीं। कोपरनिकस और गैलीलियो आदि अपने से पहले के लोगों के मतों को चुनौती दे चुके थे। इन्होंने अपने सिद्धान्तों को सिद्ध भी किया था। नये वैज्ञानिक सिद्धान्त स्थापित हो रहे थे। इस विज्ञान की शक्ति इसी में थी कि इसने किसी अन्य की शक्ति को नहीं माना और सत्य को स्वयं खोजता रहा।

एक समय में भौतिकशास्त्र दर्शन की ही एक शाखा थी। उस समय वैज्ञानिक ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार नहीं करते थे। धीरे-धीरे जब लोगों ने विज्ञान को स्वीकार करना शुरू कर दिया और वे आत्मनिर्भर होने लगे तब लोगों ने ईश्वर को अस्वीकार करना शुरू कर दिया। बेकन ने कहा कि प्रकृति का अनुसरण करने या ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करने में समय गँवाने से अच्छा है कि नये वैज्ञानिक सिद्धान्त खोजे जायें। यह वह समय था जब यह माना जाता था कि प्रकृति नारी सुलभ होती है और उसे कुछ भी करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। यही कारण है कि मनुष्य ने प्रकृति पर आधिपत्य करने का प्रयास किया। वैज्ञानिकों ने दर्शन में भौतिकवाद को स्थापित करने का प्रयास किया।

डेकार्ट ने कहा I think therefore I am । डेकार्ट ने गणितीय प्रकृति में विश्वास किया और माना कि गणित के नियम प्रकृति, मनुष्य, पशु, वनस्पति और प्रकृति के रहस्यों आदि को खोजने में समर्थ हैं। ब्रह्माण्ड की गणितीय प्रकृति महत्त्वपूर्ण है।

डेकार्ट के अनुसार सृष्टि एक मशीन है, जीवित मनुष्य भी मशीन है और सब कुछ गणित के नियमों से संचालित है।

डार्विन ने विकास का सिद्धान्त दिया परन्तु श्री ओरोबिन्दो ने कहा कि अधिकतर स्थितियों में हम विज्ञान का प्रयोग करना नहीं जानते। उनके अनुसार भौतिकवाद ने भी मानवता की महान् सेवा की है। विज्ञान ने वर्तमान सभ्यता का निर्माण किया है। यदि इसमें गुण नहीं होते तो यह इतने समय तक विद्यमान नहीं रहता। इसने मनुष्य को अन्धविश्वास से बचाया, बर्बरता से बचाया। परन्तु इससे एक अन्य बर्बरता ने जन्म लिया वह है आर्थिक बर्बरता। उनके अनुसार न तो भौतिकवाद को नकारा जा सकता है और न ही वैराग्यवाद को। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का मिश्रण करके ही हम आगे बढ़ सकते हैं। विज्ञान के विकास के कारण आज सूचना तो सहज ही उपलब्ध है लेकिन इस सूचना का उपयोग कैसे किया जाये यह सीखना होगा। यह हम तभी सीख सकते हैं जब हम विज्ञान और अध्यात्म के समन्वित रूप को समझ सकें। उनका मानना था कि भारतीय दर्शन उन सभी प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ है जहाँ विज्ञान अपने आपको असहाय महसूस करता है। विज्ञान प्रकृति या मनुष्य के भौतिक शरीर की संरचना और क्रिया–कलापों की व्याख्या तो कर सकता है परन्तु इससे आगे जाकर वह चेतना के प्रश्नों पर मौन हो जाता है।

वेदों में चेतना के सभी चित्र जैविक हैं। यांत्रिक एक भी नहीं। इसी चेतना के द्वारा हम ज्ञान की क्षमताओं को जानने की चेष्टा कर सकते हैं। ज्ञान परिवर्तन लाता है भौतिक जगत् में भी और पराभौतिक जगत् में भी। हम विरोधाभास के जगत् में रहते हैं परन्तु मनुष्य में उस जगत् को जानने की क्षमता भी है जो इस भौतिक जगत् से अलग है।

उन्होंने बुद्धि से आगे जाकर चेतना के स्तरों को स्वीकार किया। बुद्धि के ऊपर और नीचे दोनों ओर चेतना के स्तर हैं। ये स्तर साधना के लिए हैं। जो लोग आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हैं उनके लिए यह महत्वपूर्ण है।

श्री ओरोबिन्दो ने चेतना के सभी स्तरों को बहुत अच्छी तरह पहचाना। चेतना को अधिकतर मस्तिष्क के साथ ही परिभाषित किया जाता है परन्तु बौद्धिक चेतना केवल मानवीय सीमाओं तक ही रहती है जो कि चेतना की सभी संभाव्य अवस्थाओं को अपने में समाहित नहीं करती। जहाँ मानवीय दृष्टि सभी रंगों को देखकर चुक जाती है, जहाँ मनुष्य की श्रवण क्षमता सभी ध्वनियों को सुनकर थक जाती है, यह उससे भी ऊपर या नीचे देखने और सुनने की सीमाओं से परे है। अत: मनुष्य की सीमाओं से

ऊपर या नीचे चेतना की कई शृंखलाएँ हैं जिससे सामान्य मानव चेतना का कोई संबंध नहीं होता और वे इसे अचेतन मानते हैं।[१]

उनके अनुसार चेतना अस्तित्व की एक मूलभूत स्थिति है। यह ऊर्जा है, गति है, चेतना के संचार से ही सृष्टि का निर्माण होता है। इसमें न केवल समूचा ब्रह्माण्ड स्थित है बल्कि सूक्ष्म जगत् भी चेतना ही है जो कि अपने को व्यवस्थित कर रही है। उदाहरण के लिए जब चेतना अपनी गति के दौरान या गति के दबाव में अपनी क्रिया को भूल जाती है तो यह अचेतन प्रतीत होने लगती है। ऊर्जा जब अपने आकार को भूल जाती है तब भी चेतना है जो ऊर्जा में स्थित है; जो आकार और उसके विकास का निर्धारण करती है। जब वह धीरे-धीरे विकसित होकर अपने आपको पदार्थ से मुक्त करना चाहती है तो आकार में रहते हुए भी यह जीवन का रूप लेती है। यह जीवन चाहे मनुष्य का हो चाहे पशु का यह स्वयं क्रम में आगे जाकर मानव से भी अधिक कुछ बन जाता है।[२]

श्री ओरोबिन्दो और अतिबौद्धिक (Supermind) समानार्थक हैं। उन्होंने Supermind को नीत्शे से अलग अर्थ में प्रयुक्त किया। नीत्शे ने Supermind को जूलियस सीज़र और ईसा मसीह का मिश्रण माना। परन्तु श्री ओरोबिन्दो ने इसे स्वीकार नहीं किया।

उन्होंने Supermind को जगत् के शासक के रूप में भी स्वीकार नहीं किया। Supermind बुद्धि की शक्तिशाली सतह या बौद्धिक शक्ति नहीं है। यह सत्य चेतना है, यथार्थ विचार है। वेदों और उपनिषदों में महत् शब्द पाया जाता है। ईशोपनिषद् में महत् स्वर्णिम आच्छादन से ऊपर है। Supermind को स्वर्णिम आच्छादन माना गया है। इस स्वर्णिम आच्छादन के हट जाने से हम Supermind से जुड़ जाते है।

श्री ओरोबिन्दो मानव चेतना को बदलने के लिए प्रतिबद्ध थे। वह ऐसी शक्ति की खोज में थे जो मानव प्रकृति को बदल दे। वह मानते थे कि हमारी भौतिक संरचना विचारों को न तो उत्पन्न कर सकती है और न ही इनकी व्याख्या उस तरह कर सकती है जिस तरह इंजन वाष्प या ऊर्जा को उत्पन्न करता है। यह कार्य एक आंतरिक शक्ति का है किसी भौतिक व्यवस्था का नहीं।[३] यही आंतरिक शक्ति चेतना है जो कि यथार्थ है, जो सत्ता में निहित रहती है। यह वहाँ तब होती है जब यह सतह पर क्रियाशील नहीं होती बल्कि मौन और गतिहीन होती है, यह वहाँ तब भी होती है जब यह सतह पर दृष्टिगत नहीं होती और बाह्य वस्तुओं में क्रियाशील नहीं होती परन्तु आन्तरिक स्तर पर क्रियाशील होती है।[४]

1. Sri Aurobindo, The life Divine, P. 233
2. Sri Aurobindo, The life Divine, PP. 236-7
3. Sri Aurobindo, The life Divine, P. 86
4. Sri Aurobindo birth centenary library SABCL Vol. 22, P. 23

श्री ओरोबिन्दो के अनुसार चेतना की वास्तविक प्रकृति क्या है? इस बात का उत्तर देना आसान नहीं है। ईश्वर में आस्था रखने के कारण वह दिव्य आत्मा या ब्रह्म का अस्तित्व सम्पूर्ण जगत में व्याप्त मानते हैं। यही कारण है कि वह इस बात में विश्वास करते हैं कि चेतना अन्य कुछ नहीं बल्कि सच्चिदानन्द स्वयं है। उनके विचार में सच्चिदानन्द वस्तुत: सत्ता या सत् है, चेतना चित्त् शक्ति है और साथ ही आनन्द भी है। चेतना जैसा कि सामान्य तौर पर माना जाता है न केवल स्वत: मन और ब्राह्य वस्तुओं को जानने की शक्ति है बल्कि यह दावा भी किया जाता है कि यह एक सक्रिय और क्रियात्मक ऊर्जा है। इसी कारण ओरोबिन्दो इसे केवल चित्त न मानकर चित्त्-शक्ति मानते हैं।

वैचारिक स्तर पर और आगे जाकर वे कहते हैं कि सर्वोच्च सत्ता निरपेक्ष है, शुद्ध है और सत् है। इसका अस्तित्व इसलिए है क्योंकि एकमात्र यही सत्तावान् है। ऐसी कोई सत्ता नहीं है जो इससे स्वंतत्र है या इसकी आत्माभिव्यक्ति से परे हो। यह सर्वोच्च सत्ता शुद्ध ज्ञान है निरपेक्ष चेतना है जिसे हम चित्त कहेंगे। हमें इस बात पर पूरा ध्यान देना होगा कि हम ब्रह्म की निरपेक्ष चेतना और अपने व्यक्तिगत विचारों और ज्ञान के मध्य भ्रमित न हों और न ही इसे किसी सर्वज्ञ बुद्धि जैसे अलंकारों और लक्षणों से पुकारें। बुद्धि, विचार, सर्वज्ञता, अविद्या केवल ऐसे साधन मात्र हैं जिसमें चेतना विभिन्न परिस्थितियों में आकार ग्रहण करती है। लेकिन उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म की शुद्ध चेतना की अवधारणा जो कि हमारे विचारों को और आगे लेकर बढ़ती है हमें बताती है कि ब्रह्म कोई ऐसी दृष्टिहीन सार्वभौमिक शक्ति नहीं है जो अपनी यंत्रवत् प्रकृति के द्वारा कार्य कर रही है और न ही शक्ति के कारण अचेतन है। वह चेतन है बल्कि वह केवल चेतन ही नहीं है, चित् और सत् भी है। इससे अनिवार्यत: यह निष्कर्ष निकलता है कि चित् और सत् दोनों एक हैं सत्ता चेतन है और इसे चैतन्य से अलग नहीं किया जा सकता और सर्वोच्च सत्ता परम आनन्द या निरपेक्ष आनन्द है। क्योंकि सत् और चित् समान है अत: इन्हें आनन्द से अलग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार सत्ता चेतन है और इसे चैतन्य से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार चेतन सत्ता आनन्दमयी है इसे आनन्द से अलग नहीं किया जा सकता। हम सीमित सत्ताओं में भी इसे महसूस कर सकते हैं या भौतिक वस्तुओं में भी जीवन की चेतना को सूक्ष्म रूप में पाते हैं।

अब श्री ओरोबिन्दो और आगे बढ़ते हैं। सच्चिदानन्द के बाद वे सत्यम् ज्ञान् अनन्तम् की बात करते हैं। उपनिषद् कहते हैं कि ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण नहीं किया अपितु वह स्वयं ही सृष्टि बन गया। प्रश्न आता है कि सत् तथा अस्तित्व का क्या संबंध है? किसी वस्तु के सत् होने के लिए अस्तित्ववान् होना आवश्यक है। अस्तित्व के कारण ही वस्तु सत् होती है। पहले अस्तित्ववान् या सत्ता आती है उसके बाद सत् आता है।

अगला प्रश्न आता है कि चित् और ज्ञान में क्या संबंध है? यदि चेतना होती है तो ज्ञान भी होता है और यदि ज्ञान होता है तो चेतना भी होती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए चेतना के स्तर को बढ़ाना होगा

तब ज्ञान अपने आप बढ़ जायेगा।

अब प्रश्न यह है कि आनन्द और अनन्त में क्या संबंध है? सीमाएँ हमें दु:ख देती हैं, जब हम सीमाओं में होते हैं तो इच्छाएँ जन्म लेती हैं। इन इच्छाओं की पूर्ति से हमें सुख तो मिलता है पर आनन्द नहीं मिलता। आनन्द हमें अनन्त से मिलता है अत: आनन्द अनन्त होता है चेतना का अनन्त होना आवश्यक है। यह साधना से संभव है। चेतना को बढ़ाने की आवश्यकता निरन्तर रहती है।

श्री ओरोबिन्दो के अनुसार दु:ख से बचने का मार्ग हमारे अन्दर है। हम अपने में संकीर्ण हैं। हमने अपने अन्दर की चेतना को संकीर्ण बना रखा है इसलिए हम दु:खी हैं, हमें अपनी चेतना को बढ़ाना होगा। उनके अनुसार परमसत्ता ने हमें आत्मा रूपी उपहार दिया है। यह ऐसा दर्पण है जिसमें हम ब्रह्म को प्रतिबिम्बित कर सकते हैं ऐसा हम अपनी चेतना को विस्तार देकर कर सकते हैं।

श्री ओरोबिन्दो ने ऐसा ही किया। उन्होंने आत्मा के सच्चिदानन्द पक्ष को अधिक व्यापक बनाकर दिव्य सत्ता का साक्षात्कार किया।